International Journal of Applied Research 2018; 4(1): 160-162

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2018; 4(1): 160-162
www.allresearchjournal.com
Received: 15-05-2017
Accepted: 19-06-2017

डॉ. जितेन्द्र मिश्र
सहायक प्राध्यापक इतिहास, इंदिरा स्मृति महाविद्यालय, न्यू रामनगर जिला सतना (म.प्र.), भारत

Correspondence
डॉ. जितेन्द्र मिश्र
सहायक प्राध्यापक इतिहास, इंदिरा स्मृति महाविद्यालय, न्यू रामनगर जिला सतना (म.प्र.), भारत

प्राचीन भारतीय इतिहास में पूर्व मध्यकाल के प्रथम चरण में नारियों का सम्पत्तिक अधिकार का अध्ययन

डॉ. जितेन्द्र मिश्र

सारांश
किसी भी समाज अथवा राष्ट्र के सर्वतोमुखी अभ्युदय में स्त्री और पुरुष का समान महत्व होता है। पुरुष यदि घर से बाहर के कार्यों की सुचारुता एवं उन्नति का कर्तव्य वहन करता है, तो स्त्री सेवा, सुश्रुषा, स्नेह आदि के सम्बलपूर्वक घर के विभिन्न कष्टसाध्य दायित्वों का निर्वाह करती हुई अपनी चरम उपयोगिता को सार्थक रूप में सिद्ध करती है। स्त्री के बिना पुरुष अपूर्ण है। जीवनरथ के दोनों चक्रों (स्त्री एवं पुरुष) के एकसमान चलने पर ही जीवन आनन्दमय बनता है। स्त्री के विविध रूप हैं – पुत्री, भगिनी, पत्नी, माता आदि। इस सभी रूपों में पत्नी का रूप सर्वाधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि पत्नी पद के उपरान्त ही स्त्री माता पद की अधिकारिणी होती है।

कुट शब्दः प्राचीन भारतीय इतिहास, पूर्व मध्यकाल, सम्पत्तिक, शिक्षा

प्रस्तावना
भारतीय सामाजिक व्यवस्था में हिन्दू नारी का स्थान प्राचीन काल से ही आदरणीय एवं मर्यादायुक्त रहा है। कन्या एवं बहन के रूप में नारी पूज्या मानी जाती थी तो माता के रूप में परम् आदरणीय एवं पूज्यनीय थी, वहीं पत्नी के रूप में उसे घर की साम्राजी पद प्राप्त था। भारतीय धार्मिक साहित्य में नारी को शक्ति स्वरूपा, करुणा, शील, यश, ऐश्वर्य और सम्पत्ति वात्सल्यमयी, श्री एवं लक्ष्मी युक्त माना गया। नारी को पुरुष की प्रेरणा माना गया, उसके बिना पुरुष को अपूर्ण कहा गया है।
वेदों में नारी को ब्रह्मा कहा गया है अर्थात वह स्वयं विदुषी होते हुए अपनी संतान को सुशिक्षित बनाती है।[1] पुराणों में नारी को सृष्टि तथा सामाजिक संतुलन का आवश्यक अंग बताया गया है। वायु तथा ब्राह्मण पुराण में कहा गया है कि स्त्री रूप धारिणी वसुन्धरा वैनय को निर्देशित करती है तथा जन–जीवन के अस्तित्व में उसी के कारण भूत प्रतिष्ठित है।
स्त्रियों की स्थिति में युग में अनुरूप परिवर्तन होता रहा है। उसकी स्थिति में वैदिक युग से लेकर पूर्व मध्य युग तक अनेक उतार–चढ़ाव आते रहे हैं तथा उसे अधिकारों में भी तद्नुरूप परिवर्तन होते रहे हैं। वैदिक युग में नारी अवस्था अत्यन्त उन्नत और परिष्कृत थी, किन्तु परिवर्ती काल में उसकी स्थिति में परिवर्तन प्रारंभ हो गया, जो शनैः–शनैः अवनति की ओर अग्रसर होता रहा और नारी की स्थिति निम्न व दयनीय होती गयी। विवेच्य युग की राजनीतिक अशांति और आर्थिक वैषम्य का प्रभाव नारी जीवन पर भी पड़ा।
फलतः इस काल में नारी की स्थिति में अनेक परिवर्तन हुये। मुस्लिम आक्रमणों के आंतक ने एक ओर संयुक्त परिवार के अनुशासन को दृढ़ किया, तो दूसरी ओर पर्दा–प्रथा तथा सती–प्रथा का प्रसार हुआ। पूर्व मध्यकाल की विचित्र एवं ध्यातव्य स्थिति यह है कि नारी के शैक्षणिक अधिकारों में तो ह्रास हुआ, किन्तु उसके साम्पत्तिक अधिकारों में वृद्धि हुई। मुसलमानों के आक्रमणों एवं अत्याचारों से भयभीत हिन्दू समाज ने अपने कन्याओं के कौमार्य की रक्षा के लिये बाल–विवाह का प्रचलन किया तथा स्त्रियों को पोषण की चिन्ता के कारण उनके साम्पत्तिक अधिकारों में वृद्धि की। पूर्व मध्यकालीन समाज में नारी जीवन में होने वाले परिवर्तनों के मूल में भी मुख्यतः प्रतिरक्षात्मक भावना ही कार्यरत जान पड़ती है।
भारतीय सामाजिक व्यवस्था में स्त्रियों का स्थान कतिपय स्थितियों एवं कालों को छोड़कर सदैव ही महत्वपूर्ण रहा है। उसका स्थान आदर्शात्मक एवं मर्यादायुक्त था। स्वयं का मनोनुकूल आत्मविकास एवं उत्थान कर सकने का अधिकार एवं अवसर उन्हें प्राप्त रहा है। कन्या, पत्नी, माँ के त्रिस्वरूप में वे सदैव ही समाज के निर्माण में अग्रणी भूमिका निभाती रही है। भारतीय धर्मशास्त्र में नारी सर्वशक्ति सम्पन्ना मानी गई तथा विद्या, शील, ममता, यश और सम्पत्ति की प्रतीक रूप में स्वीकृत हुई।

शनैः–शनैः समाज में उनका महत्व इतना बढ़ गया कि उसके बिना एकाकी पुरुष अपूर्ण एवं अधूरा समझा गया। 'पुरुष' शब्द की निर्मित स्त्री, संतान और व्यक्ति की समष्टि में मानी गई। वैदिक साहित्य के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि तात्कालीन समाज में पुत्री का जन्म इतना चिंताजनक न था जो कालान्तर में हो गया था। ऋग्वेद में नारी का स्थान आदरणीय बताया गया है। माता–पिता के वक्षस्थल पर लेटी अबोध कन्याओं के वर्णन से ज्ञात होता है कि कन्या जन्म को हेय दृष्टि से नहीं देखा जाता था। पुत्र के साथ पुत्रियों की कामना भी की जाती थी। [2] एक अन्य स्थान पर तर्कशकी प्रशंसा बहुपुत्रीक पिता के रूप में की है।[3]

प्राचीन काल से लेकर मुध्ययुग तक लगभग सभी धर्मशास्त्रकारों ने स्त्रीधन की संकल्पना पर अपना विचार प्रस्तुत किया है। स्त्रीधन का वस्तुतः क्या महत्व है तथा स्त्रीधन के अन्तर्गत सम्पत्ति के किस स्वरूप को स्वीकृत किया जाय इस पर धर्मशास्त्रकारों ने अपने–अपने विचार विस्तृत रूप में व्यक्त किये है। स्त्रीधन का अर्थ है स्त्री की सम्पत्ति अर्थात् जिस पर पत्नी का पूर्ण अधिकार होता था, जिसे वह अपनी इच्छा से व्यय कर सकती थी। प्राचीन काल में पत्नी का पति की सम्पत्ति में पूर्णरूपेण स्वामित्व न था। शायद इसीलिए धर्मशास्त्रकारों ने परिवार एवं समाज में उसकी स्थिति की स्थिरता हेतु उसे स्त्री धन के रूप में आर्थिक अधिकार देने का प्रयत्न किया।

वैदिक युग में कन्या को विवाह में दिये जाने वाले दहेज (दहतु) की वस्तुओं का उल्लेख है, जिसमें वस्त्र, आभूषण एवं अन्य गृह उपयोगी सामग्रियों आदि का समावेश होता था। अथर्ववेद में इसका उल्लेख मिलता है। [4] बौधयन [5] और वशिष्ट ने विवाह में प्राप्त अंलकारों तथा द्रव्य को स्त्रीधन कहा है। [6] आपस्तम्ब ने भी भाई, पिता एवं संबंधियों द्वारा दिये गये आभूषणों को स्त्रीधन माना है, जिस पर पत्नी का पूर्ण अधिकार बताया है। [7] कौटिल्य के अनुसार स्त्रीधन के दो रूप होते हैं – प्रथम जीवन निर्वाह के साधन, इसके अन्तर्गत भू–सम्पत्ति और स्वर्ण जो दो हजार कर्षार्पण हो सकता था। दूसरा अबाध्य या शरीर पर धारण किये जाने वाले आभूषण जिनकी कोई सीमा नहीं थी। कौटिल्य ने शुल्क आधेय, अधिवेदनिक और बन्धुदत्त नामक स्त्रीधन का वर्णन किया है। [8] स्त्रीधन के दो रूप माने गये है – पहला सौदायिक सम्पत्ति, दूसरा पति नियंत्रित सम्पत्ति।

सौदायिक सम्पत्ति – ऐसी सम्पत्ति जिस पर स्त्री का पूर्ण प्रभुत्व होता था सौदायिक सम्पत्ति कही जाती थी, जिसके अन्तर्गत विवाह के समय माता–पिता एवं विवाह के बाद पति द्वारा दी गयी सम्पत्ति आती थी। इस सम्पत्ति का उपभाग पति नहीं कर सकता था। याज्ञवल्क्य के अनुसार केवल विशेष परिस्थितियों में जैसे अकाल, अनिवार्य धर्मकार्य एवं बीमारी आदि में ही पति इसका प्रयोग कर सकता था [9], और वह भी पत्नी की अनुमति से।

पति नियंत्रित सम्पत्ति – यह वह सम्पत्ति होती थी जिसका पत्नी उपभोग तो कर सकती थी परन्तु उसे दान अथवा विक्रय नहीं कर सकती थी। कात्यायन ने इस सम्पत्ति के दो प्रकार बतायें है – प्रथम शिल्पों से प्राप्त धन, द्वितीय वह धन जो माता–पिता व पति आदि संबंधियों के अलावा अन्य व्यक्तियों के द्वारा दिया गया। उक्त दोनों प्रकार की सम्पत्ति पर पति का नियंत्रण होता था। [10] याज्ञवल्क्य द्वारा बताये गये छः प्रकार के स्त्री धनों में तीन प्रमुख निम्न हैः–

1. अधिवेदनिक – पति द्वारा दूसरा विवाह करने पर पहली पत्नी को दिया गया धन इसके अन्तर्गत आता है।
2. बन्धुदत्त – विवाह के समय कन्या के माता–पिता व संबंधियों द्वारा दिया गया धन बन्धुदत्त स्त्रीधन कहलाता है।
3. शुल्क–कन्या को विवाह में प्राप्त करने के लिए दी गयी राशि।

इस प्रकार याज्ञवल्क्य के अनुसार विवाह के समय माता–पिता या भाई तथा पति द्वारा प्रदत्त धन अथवा वह धन जो विवाह में अग्नि के समक्ष प्राप्त होता है या विवाहोपरान्त प्राप्त उपहार या पति के दूसरे विवाह करने पर पहली पत्नी को पति से मिला धन आदि सब स्त्री धन कहलता है।

नारद मनुस्मृति में भी छः प्रकार के स्त्रीधन का उल्लेख है–

1. विवाह के समय अग्नि के समक्ष प्राप्त धन।
2. विदाई के समय प्राप्त धन।
3. पति द्वारा प्रदत्त धन।
4. माता द्वारा प्रदत्त धन।
5. पिता द्वारा प्रदत्त धन

स्मृतिकारों में कात्यायन, मनु, याज्ञवल्क्य, नारद एवं विष्णु ने छः प्रकार के स्त्री धनों का वर्णन किया है [11]–

1. अध्याग्नि– विवाह के समय अग्नि के समक्ष दिया गया धन।
2. अध्यावहनिक – कन्या को पितागृह से पतिगृह जाते समय मिली राशि।
3. प्रीतिदत्त– नव वधू को ससुराल में प्रीतिपूर्वक मिला हुआ धन।
4. अन्वाधेय– विवाह के समय पितृकुल एवं पति कुल से मिला धन तथा विवाह समारोह में प्राप्त हुये उपहार एवं भेंट।
5. शुल्क– वह धन जो बर्तनों, पशुओं, आभूषणों एवं दासों के रूप में स्त्री को प्राप्त होता था।
6. सौदायिक– विवाह के पहले पिता–माता अथवा भाई द्वारा दिया गया धन एवं विवाहोपरान्त पति द्वारा दिया गया धन।

उपरोक्त धन के विनियोग के संबंध में स्त्री को पूर्ण स्वतंत्रता थी एवं स्त्रीधन का बलपूर्वक या उसकी अनुमति के बिना लेने वाले के लिए शास्त्रकारों ने दण्ड की व्यवस्था भी की थी। केवल विपरीत परिस्थितियों में ही पति इसका स्वयं के लिए उपयोग कर सकता था। इस प्रकार धर्मशास्त्रकारों ने आर्थिक दृष्टि से नारी के प्रभुत्व को आंशिक रूप से स्वीकार किया था एवं स्त्रीधन के माध्यम से गरिमा, सम्मान एवं प्रतिष्ठा को कायम रखा था। स्त्री धन पर पत्नी के अधिकार की समाप्ति का भी विधान था। कत्यायन ने निम्न प्रकार की स्त्रियों को इस अधिकार से वंचित किया है–

1. जो पत्नी पति के लिए हानिप्रद कार्य करती है।
2. जो पति की सम्पत्ति को नष्ट करती है।
3. जो व्यभिचारिणी हैं।
4. जो निर्लज्ज हैं।

प्राचीन भारतीय स्मृतिकारों ने नारी की सामाजिक संरचना का आधार मानते हुए समस्त सामाजिकों को सलाह दी है कि उन्नति चाहने वाले लोगों को विशेष अवसरों एवं उत्सवों के समय नारियों को वस्त्र–आभूषण आदि देकर विशेष रूप से आदर–सत्कार करना चाहिए। याज्ञवल्क्य ने भी समाज एवं परिवार में नारी की प्रमुख गतिविधियों को देखते हुए परिजनों को परामर्श दिया है कि वे विशेष अवसरों पर नारी को वस्त्र और आभूषण देकर सम्मानित करें ताकि वह सन्तुष्ट, सम्मानित और प्रसन्नचित्त होकर परिवार की उन्नति के लिए उद्यत रहे। [12] इससे स्पष्ट होता है कि स्मृतिकारों ने नारी की वास्तविक स्थिति को ध्यान में रखते हुए उसके स्त्रीधन का वर्णन किया है। कात्यायन व याज्ञवल्क्य [13] के शुल्क धन से ज्ञात होता है कि कन्या के विवाह के समय अपनी आर्थिक विपन्नता के कारण कन्या पक्ष वाले वर पक्ष से कन्या के लिए आभूषण एवं अन्य सामग्री लेते थे एवं उसे स्वयं न रखकर कन्या को ही देते थे जो शुल्क कहलाता था।

निष्कर्ष

ऐतिहासिक अनुशीलन से प्रतीत होता है कि पूर्वकाल में नारी का पारिवारिक सम्पत्ति में अधिकार विवादग्रस्त था। प्राचीन काल की अपेक्षा पूर्वमध्ययुगीन भाष्यकार एवं शास्त्रकार इस संबंध में अधिक तर्कशील और उदार थे। जिन्होंने नारी के साम्पत्तिक अधिकारों को सहज भाव से स्वीकार किया। विवेच्य युग में सम्पत्ति को लेकर दो विचारधाराओं का विकास हुआ। प्रथम विज्ञानेश्वर द्वारा प्रतिपादित 'मिताक्षरा' और द्वितीय जीमूतवाहन द्वारा प्रवर्तित 'दायभाग'। प्रथम वर्ग के अन्तर्गत जन्मना स्वत्व, अर्थात् पुत्र के उत्पन्न होते ही सम्पत्ति में उसका स्थान, दूसरे मतानुसार पिता के मृत्यु के उपरान्त अधिकार।

पूर्व मध्ययुग में स्त्रियों की स्थिति में ह्रास होता रहा। विधवाओं की संख्या में वृद्धि होने लगी, स्थिति उस समय और भी विचारणीय हो गई जब उनका भरण पोषण का भार परिवार के अन्य लोगों पर आने लगा। ऐसी स्थिति में याज्ञवल्क्य [14] पहले स्मृतिकार हुये हैं जिन्होंने इस वर्ग को साम्पत्तिक अधिकार दिलाया। वहीं मध्य युग के टीकाकारों और शास्त्रकारों ने तीन पीढ़ी तक पुरुष सन्तान तथा विधवा के अभाव में कन्या को सम्पत्ति प्राप्त करने का अधिकार दिया। विश्वरूप ने भी कन्या को सम्पत्ति का अधिकारी माना है।

मुस्लिम आक्रमणों के कारण देश में हो रहे तेजी से सामाजिक परिवेश में परिवर्तन ने पूरे भारत भूमि की स्थिति का ढाँचा ही बदल दिया। स्त्रियों को जहाँ चहारदीवारी में सीमित कर दिया, शिक्षा के अधिकार तथा स्वतंत्रता के सारे अधिकर समाप्त होने लगे, ऐसी परिस्थिति में हमारे स्मृतिकारों ने उनके भरण–पोषण के लिए व्यवस्थाएँ निर्मित की जिसके कारण पूर्व युग की अपेक्षा पूर्व मध्य काल में स्त्रियों की सर्वाधिक साम्पत्तिक अधिकार मिले।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ऋग्वेद 3.11.1
2. ऋग्वेद – पुत्रिणा व कुमारिणा विश्वमपुर्चश्वतुतः 8.31.8, 85.5
3. ऋग्वेद – वहीनां पिता बहुरस्य पुत्रिश्चिश्चा कृणीति समनावगत्य, 1.75.5
4. अथर्ववेद, 3/13/5 – 'त्वष्ट दहिते दहतुंयुवक्ति'
5. बौधायन धर्मसूत्र 2/2/49 – 'मातुरलंकारं दुहितरः साम्प्रदायिक लेभरन्नयद्धा'
6. वशिष्ठ धर्मसूत्र 17/46 – 'मातुः परिणेयं स्त्रिया विभजेरन्'
7. आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2/6/14/9 – 'अलंकारों भयार्यया ज्ञातिधनं चैके'
8. कौटिल्य का अर्थशास्त्र 3/2 – वृजिरानान्धंयं व स्त्रीधनं परद्विमहस्त्रा स्थाप्या वृजिः आपन्ध्यानियमः
9. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/147
10. स्मृति चंद्रिका 2/28
11. याज्ञवल्क्य 2/144–145, नारद स्मृति 13/9, विष्णु स्मृति 17/20/21
12. याज्ञवल्क्य 2/149
13. याज्ञवल्क्य 2/150
14. याज्ञवल्क्य 2/135